तेवरीपक्ष

तेवरी-विधा को समर्पित प्रस्तुति

वर्ष-37, अंक-1, जन.-मार्च-2020, मूल्य-15 रु., वार्षिक- 50 रु.

दर्शन बेज़ार के सद्यः प्रकाशित तेवरी-संग्रह
'खतरे की भी आहट सुन'
की द्वतीय प्रस्तुति

संस्थापक-
लोककवि रामचरन गुप्त
परामर्श-
डॉ. गोपाल बाबू शर्मा
दर्शन बेज़ार

संपादक- रमेशराज

तेवरी को विवादास्पद बनाने की मुहिम

ग़ज़ल-फोबिया के शिकार कुछ अतिज्ञानी हिन्दी के ग़ज़लकार तेवरी को लम्बे समय से ग़ज़ल की नकल सिद्ध करने में जी-जान से जुटे हैं। तेवरी ग़ज़ल है अथवा नहीं, यह सवाल कुछ समय के लिये आइए छोड़ दें और बहस को नया मोड़ दें तो बड़े ही रोचक तथ्य इस सत्य को उजागर करने लगते हैं कि हिन्दी में आकर ग़ज़ल की शक़्ल से गीतनुमा कुल्ले तो फूट ही रहे हैं, उसमें हिन्दी छन्दों की जड़ें भी अपनी पकड़ मजबूत करती जा रही हैं।

‘‘उर्दू-फारसी के जानकार हिन्दी ग़ज़लकारों पर हँसें, बहरों के टूटने की शिकायत करें लेकिन हिन्दी का ग़ज़लकार ग़ज़ल की नयी वैचारिक दिशा तय करने में लगा हुआ है। हिन्दी में ग़ज़ल अब नुक्ताविहीन होकर ‘गजल’ बनने को भी लालायित है। उसकी शक्ल भले ही ग़ज़ल जैसी हो लेकिन उस शक़्ल की अलग पहचान बनाने के लिये कोई उस पर ‘गीतिका’ का लेप लगा रहा है तो कोई उस पर ‘मुक्तिका’ का पेंट चढ़ा रहा है। ग़जल के स्वतंत्र व्यक्तित्व की पहचान स्थापित करने की इस होड़ में ग़ज़ल को ‘नई ग़ज़ल’ ‘अवामी ग़ज़ल’, व्यंग्यजल,‘अग़ज़ल ’ के कीचड़ में भी धकेला जा रहा है। नये-नये नामों के कीचड़ में सनी, कुकुरमुत्ते की तरह उगी और तनी, इसी हिन्दी ग़ज़ल को देखकर अब यह आसानी से तय किया जा सकता है कि-

हिन्दी में ग़ज़ल ग़रीब की बीबी है-

‘‘आज ग़ज़ल धीरे-धीरे गरीब की बीबी होती जा रही है। लोग उसकी ‘सिधाई’ (सीधेपन) का भरपूर और गलत फायदा उठा रहे हैं। हर कोई ग़ज़ल पर हाथ साफ कर रहा है और ग़ज़ल टुकुर-टुकुर मुँह देख रही है।’’

कैलाश गौतम, प्रसंगवश, फरवरी-१९९४, पृ. ५१

हिन्दी में ग़ज़ल की सार्थक ज़मीन कोई नहीं

‘‘इधर लिखी जा रही अधिसंख्य ग़ज़लों को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी ग़जलों के पास अपनी कोई सार्थक जमीन है ही नहीं। मेरी यह बात निर्मम और तल्ख लग सकती है। किन्तु बारीकी से देखें और हिन्दी ग़ज़ल की जाँच-पड़ताल करें तो अधिसंख्य ग़ज़लों में कच्चापन मिलेगा। दोहराव, विषय की नासमझी, अनुभवहीनता और कथ्यहीन अशआर इस कदर लिखे और प्रकाशित हुए हैं कि स्तरीय ग़ज़लें कहीं भीड़ में खो गयी हैं।’’

ज्ञान प्रकाश विवेक, प्रसंगवश, फरवरी-१९९४, पृ. ५२

हिन्दी ग़ज़ल न उत्तम कविता है, न उत्तमगीत

‘‘अभी तो मुझे हिन्दी ग़ज़ल से संतोष नहीं है-- बाजार में माल चल गया। शुद्ध के नाम पर क्या-क्या वनस्पतियां मिलावट में आ गयी, इसका विश्लेषण

साधारण पाठक तो कर नहीं पाता। हिन्दी में लिखी जाने वाली ग़ज़ल नामक रचना न उत्तम कविता है, न उत्तम गीत।''

डॉ. प्रभाकर माचवे, प्रसंगवश, फरवरी-१९९४ पृ. ५१

शायरी चारा समझकर सब गधे चरने लगे

''आज ग़ज़ल के नाम पर हिन्दी में जो कुछ छप रहा है, ऐसी रचनाओं को ही देखकर कभी समर्थ रामदास ने मराठी में कहा था-'' शायरी घास की तरह उगने लगी है।'' किसी ने उर्दू में कहा-'' शायरी चारा समझकर, सब गधे चरने लगे।''

डॉ. प्रभाकर माचवे, प्रसंगवश कर १९९४ पृ. ५१

हिन्दी में नुक़्ताविहीन 'गजल', मुक्तिका, गीतिका, व्यंगजल, अगजल, नयी गजल, अवामी ग़ज़ल की फसल के आकलन के लिये उपरोक्त तथ्यों का सत्य इस बात की चीख-चीख कर गवाही दे रहा है कि ग़ज़ल की काया की माया में कस्तूरी हिरन की तरह भटकने वाले हिन्दी ग़ज़लकार, ग़ज़ल के उस्तादों या पारखी विद्वानों से कुछ भी समझने-सीखने को तैयार नहीं हैं। उनकी ग़ज़ल, ग़जल है भी या नहीं, इसकी परख के लिये वे ग़ज़ल के उस्तादों के पास इसलिए नहीं जाते क्यों कि उन्हें पता है कि वे हिन्दी में ग़ज़ल को लाकर जिस प्रकार उसकी वैचारिक दिशा तय कर रहे हैं, उसमें ग़ज़ल की मूल आत्मा 'प्रणयात्मकता' को ही नहीं, उसके शिल्प के पक्ष मतला, मक्ता को काटा-छाँटा गया है। ग़ज़ल की मुख्य विशेषता 'हर शे'र की स्वतंत्र सत्ता' को भी धूल चटाकर उसमें गीत का ओज भरा गया है। हिन्दी ग़ज़ल के इस सरोज को ये एक दूसरे को दिखा रहे हैं। एक-दूसरे के लिये प्रशंसा-गीत गा रहे हैं। लेकिन ग़ज़ल के उस्तादों से क़तरा रहे हैं।

ग़ज़ल के एक उस्ताद हैं तुफ़ैल चतुर्वेदी, जो 'लफ्ज' नामक पत्रिका का संपादन करते हैं। उन्होंने लफ्ज़ वर्ष-१ अंक-४ के पृष्ठ-६३ व ६४ पर हिन्दी ग़जल के एक चर्चित हस्ताक्षर आचार्य भगवत दुवे के ग़ज़ल संग्रह 'चुभन' की समीक्षा लिखी है। इस पुस्तक की ग़ज़लों को लेकर लिखी गयी भूमिका में भले ही हिन्दी ग़ज़ल के एक अन्य हस्ताक्षर डॉ. उर्मिलेश ने तारीफों को पुल बाँधे हों, किन्तु 'चुभन' ग़ज़ल संग्रह के बारे में तुफ़ैल चतुर्वेदी का क्या कहना है, आइए गौर फरमाएँ-

हिन्दी ग़ज़ल में ग़ज़ल के मूलभूत नियमों का उल्लंघन

''समीक्षा के लिये प्रस्तुत आचार्य भागवत दुवे की पुस्तक 'चुभन' छन्द-दोष, भाषा का त्रुटिपूर्ण प्रयोग, व्याकरण की चूक, ग़ज़ल में शेरियत का अभाव, ग़ज़ल के मूलभूत नियमों के उल्लंघन से भरी पड़ी है। आप किसी भी गलती का नाम लें, वो किताब में मौजूद है।''

संग्रह की समीक्षा करते हुए तुफ़ैल चतुर्वेदी आगे लिखते हैं-

हिन्दी ग़ज़ल बढ़ई द्वारा मिठाई बनाने की कोशिश

''मूलतः 'चुभन' पुस्तक बढ़ई द्वारा मिठाई बनाने की कोशिश है। जो लौकी पर रन्दा कर रहा है, आलू रम्पी से काट रहा है, मावे का हथौड़ी से बुरादा बना रहा है और पनीर को फैवीकाल की जगह प्रयोग करने के बाद प्राप्त हुई

सामग्री को १२० रू. में बेच सकने की कोशिश कर रहा है। यहाँ मुझे एक ऑपेरा की समीक्षा याद आती है, जिसमें समीक्षक ने उसकी गायिका को मशवरा दिया था कि गला खराब हो तो गाना गाने की जगह गरारे करने चाहिए।''(लफ्ज़ वर्ष-१ अंक-४,पृ. ६३-६४)

हिन्दी के विद्वान लेखक कैलाश गौतम, ज्ञान प्रकाश 'विवेक', डॉ. प्रभाकर माचवे और उर्दू के उस्ताद शायर तुफैल चतुर्वेदी की उपरोक्त टिप्पणियों से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी में लिखी या कही जाने वाली ग़ज़ल की औसत शक्ल उस ग़ज़ल की तरह है जिसकी आँखें नोच ली गयी हैं, टाँगे तोड़ दी गयी है, जीभ बाहर की तरफ निकली हुई है, उसके गले से जो चीख निकल रही है, उसे हिन्दी ग़जलकार कथित सुन्दर ही नहीं, सुन्दरतम शब्दों में बाँध रहा है और अपनी इस अभिव्यक्ति को ग़ज़ल नाम से मनवाने को आतुर लग रहा है।

बहरहाल, हिन्दी साहित्यजगत में हिन्दी ग़ज़लकार काँव-काँव के महानाद की ओर अग्रसर हैं। इनके बीच उभरते हुए जो ग़जल के स्वर हैं, उनके सामाजिक सरोकार एक भयानक चीख-पुकार में तब्दील होते जा रहे हैं।

अब ऐसे हैं हिन्दी ग़ज़ल के 'वक्त के मंजर'

डॉ. ब्रह्मजीत गौतम हिन्दीग़ज़ल के चर्चित हस्ताक्षर ही नहीं, उच्चकोटि के समीक्षक और आलोचक हैं। उनका ग़जल संग्रह 'वक्त के मंज़र' इस बात की सीना ठोंककर गवाही देता है कि-

वेष कबिरा का धरे ललकारती है अब ग़ज़ल
अब तो हुस्नो-इश्क की बातें पुरानी, क्या कहूँ।

'आत्मिका' के रूप में डॉ. ब्रह्मजीत गौतम यह भी स्वीकारते है कि वे कबीर जैसे फक्कड़पन के कारण साहित्य के यातायात के कायदे-कानून समझे बिना ग़जल की राजधानी पहुँच गये हैं-

कायदे-कानून यातायात के समझे बिना
मैं हूँ आ पहुँचा ग़ज़ल की राजधानी, क्या कहूँ।

हिन्दी ग़ज़ल के सामाजिक सरोकार

कबिरा का वेश धारे डॉ. ब्रह्मजीत गौतम की ग़ज़ल किसको ललकार रही है, यह तो उनके शे'र से पता नहीं चलता, किन्तु यह तथ्य अवश्य उजागर होता है कि उनकी ग़ज़ल ने हुस्नोइश्क की बातों को पुराना कर दिया है और एक नये रूप में पहचान बनाने के लिए सामाजिक सरोकार के सारगर्भित प्रतिमान गढ़ रही है। उनके संग्रह की प्रथम ग़ज़ल के प्रथम शे'र में ही सामाजिक सरोकार की सामाजिक विसंगतियों को नेस्तनाबूत करने के लिए युद्ध करने को तत्पर एक सैनिक जैसी पहली ललकार देखिए-

गीत खुशियों के किस तरह गाऊँ
बेवफा तुझको भूल तो जाऊँ।

उक्त शे'र में आज का कबीर हुस्नो-इश्क की बातें छोड़कर किस विसंगति पर तीर छोड़ रहा है, ग़ज़ल को अग्निऋचा बताने वाले ग़ज़ल के पुरोधा अगर बता सकें तो पूरा हिन्दी ग़ज़ल साहित्य आनंदानुभूति से भर सकता है। हमारी समझ से तो इस तीर की तासीर कोई इठलाता-मदमाती प्रेमिका ही

बता सकती है।

इसी ग़ज़ल के दूसरे शे'र में आज का कबीर इस बात के लिये अधीर है कि 'जालिम' शब्द को हिन्दी के अनुकूल किया जाये और उसे 'जालिमा' की लालिमा से और नुकीला और चमकीला बनाकर उर्दू अदब के प्रतिकूल किया जाये।

जालिमा, ग़म तेरी जुदाई का
चाहकर भी भुला नहीं पाऊँ।

जुदाई के ग़म में जो आक्रोश उत्पन्न हो रहा है, वह प्रेमिका को 'जालिमा' बता रहा है, हमें तो इस सामाजिक सरोकार की लड़ाई में आनंद आ रहा है, इस शे'र के पाठक कैसा महसूस कर रहे हैं, वे ही जाने।

बहरहाल, अपने इसी अनिर्वचनीय आनंद में गोता लगाते हुए आइए इस संग्रह की दूसरी ग़ज़ल पर आते हैं। इसका भी रहस्य आप सबको बताते हैं-

हिन्दी ग़ज़ल गीत की शक़ल

ग़ज़ल का प्रत्येक शे'र उसके अन्य शे'रों से प्रथक और स्वतंत्र सत्ता रखता है। यह ग़ज़ल की महत्वपूर्ण विशेषता ही नहीं उसकी अनिवार्य शर्त है। किन्तु हिन्दी के ग़ज़लकार इस शर्त की हत्या कर हिन्दी में ग़ज़ल कुछ इस तरह कह रहे हैं कि उसकी कथित ग़ज़ल के शेरों के भाव एक-दूसरे के कथ्य के पूरक बन जाते हैं और गीत जैसा रूप दिखलाते हैं। ग़ज़ल को कीचड़ बनाकर ग़ज़ल के मलवे से उठाया गया यह कमल ग़ज़ल की कैसी शक़ल है, आइए इसका भी अवलोकन करें-

श्री ब्रह्मजीत गौतम की दूसरी कथित ग़ज़ल में आज के मंत्री रूपी महानायक के आगमन की जैसे ही बस्ती को खबर लगती है तो इस ग़ज़ल के पहले शे'र में बस्ती-भर में खुशियाँ छा जाती हैं। दूसरे शे'र में बताया जाता है कि इस महानायक का ज्यों ही दौरे का कार्यक्रम बना था तो बस्ती की तरफ सारी सरकारी जीपें दौड़ पड़ीं। तीसरे शे'र में पंचों की पंचायत बिठाकर उसके स्वागत की तैयारियाँ कर ली गयीं। चौथे शे'र में यह निर्देश दिया गया कि उस महानायक को कौन माला पहनायेगा। और कौन उसका यशोगान करेगा। पाँचवें शे'र का दृश्य यह है कि स्वागत-स्थल को फूलों से इस तरह सजाया गया जैसे वर्षों से वहाँ फुलवारी शोभायमान हो। छठा शे'र पी.डब्ल्यू.डी. विभाग द्वारा दीवारों को पोतने और बजरी से राह सँवारने में जुट गया है। अन्तिम शे'र में महानायक के पधारने और उसके साथ फोटो खिंचाने के जिक्र के साथ-साथ महानायक के वादों की अनुगूँज को रखा गया है। इस ग़ज़ल में ग़ज़ल के शास्त्रीय सरोकारों से अलग हर अंदाज नया है, जो उद्धव शतक की याद को तरोताजा करते हुए बताता है कि कोई माने या न माने हिन्दी में ग़ज़ल का रूप गीत जैसा है। इस विषय में उर्द वालों का विचार क्या है, जानना मना है। यह हिन्दी की ग़ज़ल है, इसमें ग़ज़लियत तलाशना, बालू से तेल निकालना है, बिना सोचे-समझे इसे ग़ज़ल मानना है। यह ग़ज़ल कबीर का वेश धरे हमारे गलीज सिस्टम को ललकार रही है या उसकी आरती उतार रही है, इसका अनुमान लगाना भी मना है। कुल मिलाकर ग़ज़ल के नाम पर कोहरा घना है।

अतः बात को न बढ़ाते हुए पुनः कबीर का बानी को दुहराते हुए 'वक्त के मंज़र' संग्रह की तीसरी ग़ज़ल के चौथे शे'र पर आते हैं। इस शे'र में आज का कबीर बता रहा है कि नायिका के कपोल के तिल ने उसे ढेर कर दिया है-

मेरा कातिल है तेरे रूख का तिल
जान मेरी तो ले गया मुझसे।

क्या बह्रों का कबाड़ा कर लिखी जाती है हिन्दीग़ज़ल?

नायिका के तिल पर जान न्यौछावर कर देने वाली तीसरी ग़ज़ल सम्भवतः 'फाइलातुन मफाइलुन फैलुन' बहर में कही या लिखी गयी है। जो कि १७ मात्रा की ठहरती है। इस बहर में ग़ज़ल के प्रारम्भ के दो अक्षरों में SI (दीर्घ लघु) स्वरों का प्रयोग करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। ऐसा न होने पर मिसरा बहर ही नहीं लय से भी खारिज हो जाता है। लेकिन यह हिन्दी ग़ज़ल का ग़ज़ल की बहर से कैसा नाता है कि इस तीसरी ग़ज़ल के मतला की दूसरी पंक्ति के प्रारम्भ में 'ऐसी' शब्द, इसके चौथे शे'र के पहले मिसरे के आरम्भ में 'मेरा' शब्द , छठे शे'र के दूसरे मिसरे में 'लेके' शब्दों के प्रयोग के कारण 'फाइलातुन' घटक का 'फाइ' गतिभंगता का ही शिकार नहीं होता, अपने १७ मात्राओं के निश्चत आधार को भी बीमार बनाता है। फिर भी इसे हिन्दी ग़ज़ल बताने में किसी का क्या जाता है? हिन्दी ग़ज़ल में इस तरह का दोष आता है तो आता है।

इसीलिए तो हिन्दी ग़ज़ल में आये दोष को लेकर मस्त, बेफिक्र और मदहोश ग़ज़लकार सीना ठोंकते हुए यह बयान देकर महान बनने की कोशिश करता है-

'जीत' न करना बह्र की चर्चा अब हिन्दी ग़ज़लों में
वरना इक दिन लोग तुम्हें सब बल्वाई बोलेंगे!

ग़ज़ल की जान उसकी मूल पहचान 'बहर' को हिन्दी में लिखी जाने वाली ग़ज़ल से धक्के मारकर, टाँग घसीटकर, बाल खींचकर बाहर कर देने से अगर हिन्दी ग़ज़लकार के कर्म में संतई, सहनशीलता आती है और बल्वाई होने के आरोप से मुक्त हुआ जा सकता है तो आजकल इससे उपयुक्त और भला क्या वातावरण हो सकता है। ग़ज़ल के बदन से बहर का यह चीरहरण यदि हिन्दी ग़ज़लकारों के लिये सुकर्म है तो इसमें कहाँ की और कैसी शर्म है

हिन्दी ग़ज़ल के काफियों और रदीफ को विकृत बनाना क्या ग़ज़ल का ओज बढ़ाना है?

'वक्त के मंजर' गजल संग्रह के पृ.-३३ पर प्रकाशित ग़ज़ल के काफियों का रूप बेहद अनुपम है। इस ग़ज़ल में 'शह्र' काफिये के साथ कदमताल करते हुए 'लहर' और 'नहर' काफिये 'लह्र' और 'नह्र' बनकर लँगड़ाते हुए चल रहे हैं। 'लहर' और 'नहर' काफियों की टाँगे तोड़कर 'शह्र' के साथ कदमताल कराने वाला ग़ज़लकार अपने इस सुकृत्य से सम्भवतः अनभिज्ञ नहीं, तभी तो वह सीना तान यह बयान दे रहा है- 'काफिये का होश है ना वज़न से है वास्ता'।

ठीक इसी प्रकार का सुकर्म ग़ज़ल संख्या २६ में किया गया है जिसके

काफिये 'हवाओं', 'फजाओं', 'युवाओं' से तालमेल बिठाने के चक्कर में ग़ज़लकार ने अन्तिम शे'र में 'पाँवों' को 'पाओं' में तब्दील कर अपनी नायाब सोच का परिचय दिया है। आगे वाली ग़ज़ल के काफिये में आने वाले स्वर के आधार को बीमार करते हुए 'व्यथा' की तुक 'अन्यथा' से ही नहीं 'वृथा' से भी मिलायी है।

ग़ज़ल संख्या तेरह में जिस होशियारी के साथ 'भारी' शब्द की तुक 'हुशियारी' बनकर उभरी है। हिन्दी ग़ज़ल के पंडित इस नव प्रयोग पर काँव-काँव करते हुए कह सकते हैं कि यह मूल शब्द की तोड़-मरोड़ के लिए 'काफिये के रूप में किया गया प्रयोग उतना ही मौलिक है जितना कि ग़ज़लसंख्या पचास में 'घबड़ाते' की तुक 'अजमाते' बनकर प्रयुक्त हुई है। इस प्रयोग ने भी नयी ऊँचाई छुई है।

ग़ज़ल संख्या बयालीस के मतले में 'आसमानों' की तुक 'बेईमानों' से मिलाकर हिन्दी ग़ज़लकार ने यह भी घोषणा कर दी है कि स्वर के बदलाव के आधार को मारकर भी अशुद्ध काफियों में शुद्ध मतला कहा जा सकता है। सहनशील बने रहने के लिए इस सुकर्म को भी सहा जा सकता है।

हिन्दी में ग़ज़ल अब हिन्दी छन्द के आधार पर भी अपनी पहचान बनाने को व्याकुल है। इसलिए संग्रह में पृ. संख्या-५६ पर एक कथित 'दोहा ग़ज़ल' भी विराजमान है। यह ग़ज़ल इसलिये महान है क्योंकि इसमें कााफिये के अन्त में तीन बार 'बीर' तुक का प्रयोग हुआ है। सयुक्त रदीफ-काफिये की इस ग़ज़ल में एक पहेली है, जिसे हल करते आप काफिये और रदीफ को खोजने के लिये घंटों मगजमारी कर सकते हैं।

एक ही ग़ज़ल अगर १०० शे'रों की हो और उसमें स्वर के बदलाव का आधार (काफिया) बीमार नजर आयें तो बात समझ में आती है कि स्वरों के बदलाव का आधार दुहराव का शिकार होगा ही, किन्तु ५,७,११ शे'रों की ग़ज़ल में यह खामी इस तथ्य को द्योतक है ग़ज़लकार शुद्ध तुकें ला सकता था किन्तु उसने ऐसा न कर बार-बार काफिये को रदीफ की तरह प्रयुक्त कर उसे न तो शुद्ध काफिया रहने दिया और न शुद्ध रदीफ। इस तकलीफ से ग्रस्त आज की हिन्दी ग़ज़ल फिर भी मदमस्त है, तो है।

डॉ. ब्रह्मजीत गौतम के ग़ज़ल संग्रह 'वक्त के मंजर' में ग़ज़ल के नाम पर जो कुछ भी परोसा गया है, वह भी इसमें आत्म स्वीकृति के रूप में मौजूद है-

अपनी ग़ज़लों के लिये अपनी जुबानी क्या कहूँ
कैक्टस हैं ये सभी या रातरानी, क्या कहूँ।

ग़ज़ल यदि रातरानी की तरह खुशबू बिखेरती विधा है तो यह बात दावे के साथ कही जा सकती है कि इस संग्रह की अधिकांश ग़ज़लों से यह खुशबू फरार है। सही बात तो यह है कि हिन्दी में ग़ज़ल के नाम पर एक कैक्टस का जंगल उगाया जा रहा है, जिसमें से बहर का ओज फरार है। काँटे की तरह कसते अशुद्ध रदीफ-काफियो की भरमार है। शे'र की स्वतंत्र सत्ता धूल चाट रही है।

हिन्दी में आकर ग़ज़ल अपने खोये हुए शास्त्रीय सरोकारों को माँग रही है। हिन्दी ग़ज़ल के पुरोधा हैं कि चुम्बन में आक्रोश, आलिंगन में क्रन्दन, प्रणय

में अग्निलय के आशय भी जोड़कर ग़ज़ल को न तो एक प्रणयगीत रहने दे रहे हैं और न उसे सामाजिक सरोकारों से जोड़कर नयी पहचान देने को तैयार हैं। ऐसे विद्वानों को कौन समझाये कि कृष्ण जब रास रचाते हैं तो रसिक पुकारे जाते हैं किन्तु जब वे द्रौपदी की लाज बचाते है तो 'दीनानाथ' कहलाते हैं। चरित्र बदलते ही कैसे नाम भी बदल जाता है, इसकी पहचान शिक्षार्थी और शिक्षक, शासक और शासित, अहंकारी और विनम्र, स्वाभिमानी और चाटुकार के अन्तर को समझने वाले ही बतला सकते हैं। जिन विद्वानों की मति पर रूढ़िवादी चिन्तन के पत्थर रखे हुए हैं, उन्हें ही तेवरी और ग़ज़ल की प्रथक पहचान करने में परेशानी होती है और सम्भवतः होती रहेगी।

तेवरी को विवादास्पद बनाने में जुटे हैं हिन्दीग़ज़ल के कथित विद्वान

हिन्दी ग़ज़ल के जो विद्वान ग़ज़ल का उसके शास्त्रीय सरोकारों के साथ सृजन नहीं कर सकते, ऐसे विद्वान ही तेवरी को विवादासाद बनाने में जी-जान से जुटे हुए हैं। दुर्भाग्य यह भी है कि इनमें सम्पादक भी शामिल हो गये हैं जो जानबूझ कर तेवरीकारों की प्रकाशनार्थ भेजी गयी कविताओं जैसे 'हाइकु' पर 'हाइकु में तेवरी', 'ग़ज़ल' पर 'ग़ज़ल में तेवरी' 'चतुष्पदी शतक' पर 'चतुष्पदी शतक के अंश-तेवरियाँ' 'मुक्तक-संग्रह' पर 'मुक्तक-संग्रह के अंश- तेवरियाँ 'तेवरी' पर 'ग़ज़ल में तेवरी' का लेबल लगाकर तेवरी के मूल चरित्र (अनीति- विरोध) को ही नहीं, उसके शिल्प को भी संदिग्ध और विवादास्पद बनाने का प्रयास कर रहे हैं। द्विपदीय तेवरों को त्रिपदीय रूप में छापकर अपने इस सुकृत्य पर मगन हो रहे हैं।

तेवरी का प्रामाणिक प्रारूप-

१.तेवरी न मुक्तक है, न हाइकु है, न दोहा है, न किसी छन्द विशेष का नाम है।

२. बिना विशिष्ट अन्त्यानुप्रासिक व्यवस्था के तेवरी न दोहे में लिखी जाती है, न हाइकु में, न जनक छन्द अथवा किसी अन्य छन्द में लिखी जाती है।

३. तेवरी के समस्त तेवर केवल और केवल द्विपदीय रूप में ही निश्चित तुक-विधान के साथ एक सम्पूर्ण तेवरी का निर्माण करते हैं।

सम्पादकीय शेष पृष्ठ 9 पर

दर्शन बेज़ार के सद्यः प्रकाशित तेवरी संग्रह

ख़तरे को भी आहट सुन

की आगामी १६ पृष्ठों पर क्रमशःप्रस्तुति-

२५

हे कवि मित्र! न लिखो निबल पर, पीर गरीबों की न सुनाओ
खोलो बस स्तुति पुराण ही, केवल विरुदवलियाँ गाओ।

तुम कवि हो त्रिकाल के दर्शी, वर्तमान की नब्ज टटोलो
यही समय है कुछ पाने का, इसे हाथ से नहीं गँवाओ।

धनवानों के धन से ही तो पुरस्कार सबको मिलते हैं
नगरसेठ साहूकारों के द्वारे-द्वारे शीश झुकाओ।

जो गरीब खुद भूखा मरता वह तुमको क्या दे पाएगा
जो देने में अति समर्थ हैं, उनसे मृदुसम्बध बनाओ।।

क्यों 'बेज़ार' सुदामा को तुम कान्हा बनकर ढूँढ रहे हो
अभिनन्दन जो करे संस्था उसके अध्यक्षों को ध्याओ।

२६

लूट के धन से तिजोरी वे सदा भरते रहे
जब मिला मौका उन्हें स्विसबैंक में धरते रहे।

सौंप दी जनता ने जब भी सत्ता की कुर्सी जिन्हें
बेहिचक वे देश की आर्थिक फसल चरते रहे।

जिसने टोका बीच में, फन्दा उसी पर कस दिया
इस तरह सत्ता का इस्तेमाल वो करते रहे।

युद्ध जैसे भी बना बूढ़े जटायु ने किया
देश के रावण प्रगति की जानकी हरते रहे।

अब नहीं कोई पसीजा देखकर ये दुर्दशा
लोग घर के कुछ अभावों, भूख से मरते रहे।

बुद्धिजीवी सामने 'बेज़ार' कुछ आए मगर
इमरजेन्सी का रिहर्सल देखकर डरते रहे।

२७

असुरों के घातक प्रहार से व्यथित प्रजा रक्षण होगा
मुरलीधर की अंगुली ऊपर चक्र सुदर्शन धारण होगा।

कंस-पूतना, दुष्ट दुर्योधन, दुःशासन करते आतंकित
इनसे रक्षा हेतु कृष्ण का भू पर आज अवतरण होगा।

निर्लज्जों की कपट सभा में रही द्रौपदी विवश चीखती
प्रभु पुकार सुनकर आएँगे, लज्जा का न अब हरण होगा।

डाँवाडोल हस्तनापुर है, इन्द्रप्रस्थ भी सहमा-सहमा
भीष्म पितामह कुछ न करेंगे, कुरुक्षेत्र में अब रण होगा।

तीन लोक जो रहा पालता स्वयं आज बन गया सारथी
धर्मयुद्ध है यहाँ अन्ततः अर्जुन का पूरा प्रण होगा

छुद्र हृदय दुर्बलता तजकर पौरुष पार्थ दिखाने को है
सच अब तो 'बेज़ार' समर में गीता का उच्चारण होगा।

२८

जनता का विकास की निधि से केवल इतना नाता है
रुपए में से पन्द्रह पैसा उसके हिस्से आता है।।

झूठ नहीं आँकड़े कथन है एक वजीरे-आलम का
सही मायने में तो अब भी भूखी भारत माता है।।

नुक्कड़ - नुक्कड़ बैठे नादिर रहे लूटते दिल्ली को
जाने कौन लूट का वह धन किस तहखाने जाता है।।

कामचोर भर रहे तिजोरी छल से सीना जोरी से
जिसका गिरे पसीना, उसका भरता पेट विधाता है।

राजमहल में बैठे वह तो स्वाद चखें हर व्यंजन का
मेहनतकश 'बेज़ार' चैन से कहाँ रोटियाँ पाता है।

२१

कदम-कदम पर हर कोई होता बेज़ार गया है
बिस्मल भगतसिंह का भारत खुद से हार गया है।

सिर तक डूबा हुआ कर्ज में हर बच्चा-बच्चा अब
घर का पैसा छुपकर सात समुन्दर पार गया है।

दौड़ रहे सब धन के पीछे राजा - चपरासी
लालच में हर एक आदमी हो बदकार गया है।

कभी देश के लिए लड़े तिलक से लेकर नेताजी
आज राष्ट्र के हित का जज्बा हो बीमार गया है।

काल-कोठरी काले पानी का ही जिनका घर
उन सन्तों का त्याग आज लगता बेकार गया

बिस्मिल सँग अशफाक, लाहिड़ी ने चूमा फंदा
कालचक्र काकोरी का बलिदान बिसार गया है।

हारा हैदर, हिम्मत हर्गिज हिन्द नहीं हारा
याद करो फिर टीपू हाथों ले तलवार गया है।

'जयप्रकाश' की तरह न कोई बढ़ आगे आए
बुद्धिजीवियों की जमात को पाला मार गया है।

३०

अबकी बार पेट-भर भोजन छक कर खाया छोटू ने
बड़े चाव से आजादी का पर्व मनाया छोटू ने।

अरसठ वर्ष न जाने कैसे, आते - जाते बीत गए,
इसके बीच न जाने क्या-क्या खोया-पाया छोटू ने।

प्लेट-प्यालियाँ धोते-धोते जख्मी हुई उँगलिया सब-
खोज कहीं से उन पर मरहम आज लगाया छोटू ने।

चेहरे पर हैं भले झुर्रियाँ, आँखों में लेकिन खुशियाँ
क्या-क्या खाया घरवालों को भी बतलाया छोटू ने।

पहली बार दिखाई उसको दिया सूर्य आज़ादी का
फूटी देख सुनहरी किरणें जी बहलाया छोटू ने।

इतना जोश भरा था उसमें रोक नहीं पाया उसको
छत के ऊपर पहुँच तिरंगा जा फहराया छोटू ने।

उसके लिये आज का दिन तो विजयादशमी जैसा है
घी का दीपक आँगन में 'बेजार' जलाया छोटू ने।

ख़तरे की भी आहट सुन

३१

नित हमारे हाथ में छाले हुए हैं
किन्तु रोटी के हमें लाले हुए हैं।

हर घड़ी बहता रहा अपना पसीना
और बच्चे भूख के पाले हुए हैं।

बहुत पहले हो गई बिटिया सयानी
हाथ पीले आज तक टाले हुए हैं।

उम्रभर दो जून पाने को निबाला
आँसुओं में हर खुशी ढाले हुए हैं।

जिस जगह 'बेज़ार' है अपना ठिकाना
दर्द ही डेरा वहाँ डाले हुए हैं।

३२

पैसे से हर शख़्श यहाँ अंब तोला जाता है
हर गरीब़ का दर्द इसी से रोला जाता है।

नमस्कार करने को शीश झुकाते हमम सब यूँ
कितना कौन धनी है, वही टटोला जाता है।

अंकगणित हो अति क्लिष्ट या गुणा - भाग मुश्किल
समीकरण हर जटिल कभी तो खोला जाता है।

मापदण्ड है यही बड़े-छोटे का इससे ही
विष समाज में ऊँच-नीच का घोला जाता है।

सच्चे सीधे-सादे को अपराधी कहने में
झूठ यहाँ समवेत स्वरों में बोला जाता है।

३३

सबके तेवर बदले-बदले खतरे की भी आहट सुन
देख कि तेरे अरमानों पर कहीं नहीं लग जाए घुन।

नहीं एक जैसे सब इन्साँ जिनके फूलों जैसे दिल
तेरे लिए लोग कुछ लाए बस काँटे ही काँटे चुन।

यह मत भूल कि यहाँ पतंगे जहरीले भी रहते हैं
खुश हो मत बगिया में सुनकर केवल भौरों की गुनगुन।

आगे बस्ती भी आएग़ी सेंध लगाने वालों की
गठरी दाबे हुए बटोही जिधर जा रहा अपनी धुन।

जाग्रत होकर जो ठानेगा वह अवश्य तू पायेगा
नींद टूटते ही जो बिखरें, तू ऐसे सपने मत बुन।

३४

सपने रामराज्य के नित्य संजोया करता हूँ
मैं भारत हूँ राजघाट पर रोया करता हूँ।

लिप्त हुए मेरे अनुयायी सुन अपराधों में
सत्य-अहिंसा कन्धे-कन्धे ढोया करता हूँ।

चोर-उचक्के पड़े दिखाई सत्ता पर काबिज
दृश्य देखकर ऐसे, नयन भिगोया करता हूँ।

जो जनता की खातिर हँसकर फाँसी तक पहुँचे
स्मृतियां मैं उनकी सदा पिरोया करता हूँ।

सदाचार की भूमि दिखाई पड़े जहाँ बंजर
बीज वहाँ में खुली क्रान्ति के बोया करता हूँ।

सिसक रहा बचपन, तन नंगा ढका चीथड़ों में
उसे देखते ही मैं, सुध-बुध खोया करता हूँ।

३५

नोएडा में जब से सुत ने फ्लैट खरीदा है
तब से मात-पिता का चेहरा बुझा-बुझा-सा है।

बहा पसीना भवन पिता ने जो बनवाया था
उसको कौन सँभालेगा अब इसकी चिन्ता है।

धूप, शीत, बरसात सहे हैं सब सिर के ऊपर
लगा जमा पूँजी जीवन की यह घर सँवरा है।

कैन्ट रोट पर छः सौ गज का बँगला अति सुन्दर
आयुष्मति बहूरानी को लगता कूड़ा है।

शहर आगरा भी है क्या कोई रहने लायक
यह कहकर बेटे ने भी घर से मुँह मोड़ा है।

अपार्टमेंट में रहने हित अमरीका का कल्चर
बहू और बेटे के ऊपर छाया गहरा है।

कौड़ी मोल बाद उनके घर बिक ही जाएगा
ढलते हुए बुढ़ापे पर यह दुविधा चस्पा है।

३६

पिछले साल हुई थी हत्या दादाजी की आफिस में
कल नाती को गोली मारी गई चुनावी रंजिश में।

घर में भीड़ घुसी यह कहते वोट नहीं हमको देता
साथ पड़ोसी गुप्ताजी का बेटा था शामिल उस में।

नगरनिगम हो या पंचायत असैम्बली हो या संसद
नफ़रत का यह जहर बुझा दे बोलो ताकत है किस में।

राजनीति के गलियारों में किसका दामन साफ बचा
सब पर छींटे लाल पड़े हैं आरोपों की बारिश में।

नानक महावीर के घर में आयी घृणा कहाँ से ये
पता लगाओ कौन ताक़तें शामिल है इस साजिश में।

जब 'बेज़ार' नियंत्रण बच्चों पर न रहेगा अपनों का
तब भारत-भविष्य का तारा धुँधलाएगा गर्दिश में।

३८

माँ वाणी के शब्द प्रदूषित किए मसखरों ने
जकड़ लिए कसकर साहित्यिक मंच अजगरों ने।

कवियों की ख्वाहिश है होता रहे मनोरंजन
मज़मे में मन मोहा जमकर रीछ - बन्दरों ने।

पन्त निराता बच्चन दिनकर जहाँ सुशोभित थे
वे मसनदें छीन ली स्थानीय नटवरों ने।

औरों की रचनाएँ पढ़ दीं अपनी बतलाकर
सरेआम की यही डकैती कई उस्तरों ने।

बरसों पहले बचपन में जो पढ़े चुटकुले थे
किये लेखनीबद्ध दुबारा कई सहचरों ने।

चीख-चीख कर कई द्विअर्थी दुहरा-दुहरा कर
फूहड़ता की बारिश की साहित्य जलधरों।

पढ़कर बस दो चार लाइनें, संयोजक खातिर
विरुदावलियाँ खूब कहीं बेज़ार कविवरों ने॥

३९

जो कायर माहौल आज है, कभी न ऐसा था
साठ साल पहले हर नेता गोली जैसा था।

रहे देश के लिए सभी मर मिटने को आतुर
थे जैसे नेता 'सुभाष' हर कोई वैसा था।

देख दूसरे की सम्पति ना कोई ललचाया
थे उसमें संतुष्ट सभी तब जैसा-तैसा था।

बैंक विदेशी में न किसी ने खाते खोले थे
सबने घर में रखा वही जो घर का पैसा था।

कवि भी केवल अपनी ही रचनाएँ पढ़ते थे
वही पढ़ा लिख कर खुद लाए, जैसा -वैसा था।

जेपी और लोहिया जैसे नेता थे घर घर
मत पूछो 'बेज़ार' जमाना पिछला कैसा था

४०

भेड़िए की खाल ओढ़े आ गए है कुछ सियार
देखिए अब रात-भर होगी मुहल्ले में जगार।

चैन से कोई नहीं अब सो सकेगा एक पल
भोर होने का करेंगे, लोग सारे इन्तजार।

लोग ज्यादातर नशे की गोलियाँ खाए पड़े
होश में कोई नहीं जो झाँक ले जाकर के द्वार।

दुधमुँहे बच्चों को लेकर माँ छुपी दालान में
कर किबाड़े बन्द आहट भाँपती है बार-बार।

सिर्फ बच्चे कुछ उठे पहरा लगाने के लिए
अन्यथा दिग्गज-बड़े हिम्मत सभी बैठे हैं हार।

हाल हिन्दुस्तान का 'बेज़ार' कुछ ऐसा हुआ
जिस्म में टूटन भरी है देश को नकली बुखार।

४१

दहशतगर्दों की मनमर्जी सबके ऊपर भारी है
दिन में थोड़ी चहल-पहल पर भय सबके मन जारी है।

वो मेहमान कभी जो तेरे घर आया पिछले हफ्ते
जाते-जाते फैंक गया वह नफरत की चिंगारी है।

तेरे घर का भाईचारा फूटी आँख न देख सका
आँगन का बँटवारा करने खींच गया वो क्यारी है।

उसको ज्यादा, तुझको कम क्यों, हर भाई के कान भरे
सबमें मनमुटाव करने की अब पूरी तैयारी है।

लड़ा करें भाई से भाई घर में एका नहीं रहे-
अविश्वास की सबके मन पर चला रहा वह आरी है।

दिन भर सद्भावना समिति में, रात असलहे ले घूमे-
भाषण दे तो लगे कि सचमुच गाँधी का अवतारी है।

मेरी बस्ती के वाशिन्दे, हद से ज्यादा भोले हैं
मीठे बोल बोलने वाला भागा मार कटारी है।

पाकर सब का प्यार हार्दिक गद्गद है 'बेज़ार' यहाँ
छोटा हो या बड़ा सभी का वह दिल से आभारी है।

सम्पादकीय का शेष

४. तेवरी के तेवर किसी एक ही छन्द में हो सकते हैं, या दो छन्दों को लेकर भी उनका द्विपदीय रूप निर्धारित किया जा सकता है।

५. तेवरी के प्रथम तेवर में एक अथवा दो छन्दों की व्यवस्था निर्धारित की जाती है,वह व्यवस्था ही हर तेवर में निहित होकर तेवरी को सम्पूर्णता प्रदान करती है।

६. तेवरी के तेवरों को लाँगुरिया, बारहमासी, मल्हार, रसिया, व्यंग्य, आदि शैलियों का समावेश कर रचा जा सकता है। इस शैलियों को विधा समझना ठीक उसी प्रकार है जैसे अतिज्ञानी लोग तेवरी को ग़ज़ल समझते हैं।

हिन्दी ग़ज़ल के कथित पारखी विद्वानों का कहना है कि तेवरी में पहले एक अतुकांत पंक्ति फिर उसी लय में दो-दो पंक्तियों के जोड़े जिनमें दूसरी पंक्ति का अन्त्यानुप्रास से मेल खाता हो, स्थूल रूप से यह ग़ज़ल का रूपाकार है।'' इसी कारण तेवरी ग़ज़ल है।

तेवरी को ग़ज़ल मानने का उपरोक्त आधार अगर सही है तो इसी आधार को लेकर कवित्त की रचना की जाती है। यही आधार पूरी तरह हज़ल में परिलक्षित होता है। तब यह विद्वान कवित्त और हज़ल को ग़ज़ल की श्रेणी में रखने से पूर्व लकवाग्रस्त क्यों हो जाते है? एक सही तथ्य को स्वीकारने में इनका गला क्यों सूख जाता है?

हज़ल तो शिल्प के स्तर पर हू-ब-हू ग़ज़ल की नकल है। इस नकल को ग़ज़ल कहने की हिम्मत जुटाएँ, हिन्दी ग़ज़ल के पुरोधा अगर उनकी बात साहित्य जगत में स्वीकार ली जाये तो तेवरीकार उनके समक्ष नतमस्तक होकर तेवरी को ग़ज़ल मानने के लिये तैयार हो जाएँगे।

हम मानते हैं कि तेवरी ग़ज़ल की हमशकल है किन्तु न वह ग़ज़ल की हमनवा है और न हमख्याल। शारीरिक संरचना में तो कोठे पर बैठने वाली चम्पाबाई और अंग्रेजों के छक्के छुड़ाने वाली रानी लक्ष्मीबाई समान ही ठहरेंगी। कंस और कृष्ण में भी यही समानता मिलेगी। हिटलर और गांधी में भी कोई अन्तर परिलक्षित नहीं होगा। तब क्या इन्ही शारीरिक समानताओं को आधार मानकर हर अन्तर मिटा देना चाहिए, जिसके आधार पर मनुष्य के चरित्र की विशिष्ट पहचान बनती है।

क्या हज़ल भी ग़ज़ल या हिन्दी ग़ज़ल है?

जिन विद्वानों के लिए शरीर और चरित्र एक ही चीज़ है, वे तेवरी को ग़ज़ल ही सिद्ध करेंगे, लेकिन हज़ल को ग़ज़ल सिद्ध करते समय उनकी बुद्धि कुंठित क्यों हो जाती है?

इस प्रश्न पर आकर उत्तर देने में उनकी जीभ क्यों लड़खड़ती है?

अतः पुनः पूरे मलाल के साथ यही सवाल कि ग़ज़ल की शकल की हू-ब-हू नकल 'हज़ल' है, क्या हज़ल भी ग़ज़ल या हिन्दी ग़ज़ल है?

-रमेशराज

तेवरी में गीतात्मकता

● योगेन्द्र शर्मा

ग़ज़ल के जन्म के समय, लगभग सभी प्रचलित विधाएं, कथ्य पर ही आधारित थीं। ग़ज़ल का कथ्य था, हिरन जैसे नेत्रों वाली (मृगनयनी) से प्रेमपूर्ण वार्तालाप। भजन का कथ्य था, अपने इष्ट के प्रति समर्पण तथा मर्सिया किसी दिवंगत के प्रति श्रद्धा-सुमन अर्पण था आदि।

वैज्ञानकि कहते हैं कि स्वभाव से 'नकलची' बन्दर हमारे पूर्वज थे। कटुसत्य तो यही है कि हम भेंड़ों से सर्वाधिक प्रभावित हैं। जिस स्थान पर भीड़ जुट जायें, अथवा जो व्यक्ति-भीड़ जुटा ले, उसे ही पवित्रता, महानता का चश्मा पहना देते हैं। हमारे पड़ोस में एक छोटा सी जीर्ण-शीर्ण मन्दिर है, वैसे ही पुजारी जी, पूजा में लीन, दुनियादारी से हीन। मेरे पड़ोसी मित्र कहते हैं, इस बेकार मन्दिर में जाकर क्या करेगें? यहाँ से कुछ दूर अति भव्य मन्दिर है, बड़ी बड़ी कारों में सेठ आते हैं, सैकड़ो भक्त आते हैं, बड़ा सिद्ध मन्दिर है, जो माँगो सो मिलता है। आजकल तो राजनैतिक पार्टियाँ लोकप्रिय खिलाड़ियों व अभिनेताओं को धड़ाधड़ टिकट बाँट रही हैं, क्योंकि वह भीड़ जुटाने में सक्षम हैं।

वह जीर्ण-शीर्ण मन्दिर जहां दो चार भक्त ही आते हैं, वह छोटा-सा मन्दिर ही-तेवरी का घर है, और वह भव्य मन्दिर जहाँ भक्तों की भीड़ है, हजारों का चढ़ावा है- ग़ज़ल का घर है। क्या संख्या का बल ही, वास्तविक बल है ! क्या हमारा कर्तव्य पूर्व महाकवियों का अन्धानुकरण करना ही है क्या यही तर्क काफी है, कि हर भाव की अभिव्यक्ति का एकमात्र माध्यम ग़ज़ल ही है। इतिहास गवाह है, कि जब-जब किसी नये विचार ने जन्म लिया है, यथास्थितिवादियों ने सदा उसकी उपेक्षा की, उपहास किया, फिर विरोध किया और कड़े संघर्ष के पश्चात उसे स्वीकार भी किया।

यूं शैशवकाल में ग़ज़ल अपने पाले भी ही रही, सामन्तों, बादशाहों राजाओं की लाडली रही। ग़ज़ल एक अर्से तक राजाश्रय में फलते-फूलती रही। धीरे-धीरे वह वर्तमान समाज की विसंगतियों व्यवस्था-विरोध, असंतोष की अभिव्यक्ति बन गयी। कभी-

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है, जोर कितना, बाजु-ए-कातिल में है।

जैसी ग़ज़लों ने आजादी के सिपाहियों को आत्मोत्सर्ग की राह पर चलने को प्रेरित किया। आजकल तो हर भाव की अभिव्यक्ति ग़जल के माध्यम से कर देना, एक फैशन बन गया है।

हमारा ग़ज़लकारों से अनुरोध है कि भले ही आप हमें तेवरीबाज और तेवरी को 'घेवरी' कहकर मजाक उड़ायें, आपको स्वागत है। आपको अपनी 'मृयनयनी' से प्रेमपूर्ण बातचीत करनी है, तो बाखुशी ग़ज़ल लिखें, परन्तु यदि आपको व्यवस्था से युद्ध करना है, तो क्या यहीं 'रोमांटिक' नाम ही बचा है, आपके पास? क्या आपके पास 'नामों का अकाल' है? या फिर बताया जाये, कि हम वैचारिक रूप से कहाँ ग़लत है? क्या हिवस्की में शक्ति-रूह-अफ़्ज़ा

मिलाना उचित है? यदि कोई दवा कम्पनी द्राक्षासव को लेबिल लगा कर आपको कुमारी आसव दे रही है, तो क्या यह ग्राहकों के साथ धोखाधड़ी नहीं है, ठीक है, 'तेवरी' अटपटा लगता है, तो कोई दूसरा नाम सुझा दीजिये, परन्तु किसी विधा से ऐसी मनमानी, घालमेल मत कीजिये।

तेवरी की प्रेरणास्त्रोत भले ही ग़ज़ल रही हो, परन्तु वह आज शिल्प व कथ्य की दृष्टि से गीत के अधिक करीब है। ग़ज़ल का हर शेर जहाँ स्वयं में 'मुकम्मल' होता है, वहां तेवरी का हर तेवर आपस में अन्तरसंबंधित होता है। भावान्वति में एकरसता होती है, निरन्तरता होनी है।

अरूण लहरी की यह तेवरी, एक बेरोजगार का सरकार को खुला-पत्र प्रतीत होता है। हर तेवर एक माला की तरह आपस में गुथा हुआ है-

हर नैया मंझधार है प्यारे
टूट गयी पतवार है प्यारे।
हर कोई भूखा नंगा है
ये कैसी सरकार है प्यारे।
शिक्षा पाकर बीए , एमए
हर कोई बेकार है प्यारे।

इसी क्रम में योगेन्द्र शर्मा की तेवरी का हर तेवर, माला जैसा प्रतीत होता है। वस्तुतः यह तेवरी, एक भ्रष्ट थानेदार पर लिखी गयी 'पाती'-सी प्रतीत होती है-

डाकुओं कौ तुमही सहारौ थानेदारजी
नाम खूब है 'रह्यो, तुम्हारौ थानेदारजी।
सच्चे ईमानदार डूब गये नदी बीच
गुंडन कूं रोज तुम तारौ थानेदारजी।
देवे नहीं घूस कोई, फिर तौ जी आपको
फौरन ही चढ़ि जात पारौ थानेदारजी।

एक अभावों में पली-बढ़ी मध्यवर्गीय गृहणी, अपनी सहेली को अपनी मनोव्यथा, सुरेश त्रस्त की तेवरी के माध्यम से सुना रही है। हर तेवर की भावान्वति दूसरे से अन्तरसंबंधित है। तेवरी दृष्टव्य है-

दलदल में है गाड़ी बहिना,
गाड़ीवान अनाड़ी, बहिना।
दुख के पैबन्दों में जकड़ी
खुशियों की हर साड़ी बहिना।
साँस-साँस पर दुखदर्दों की
चलती आज कुल्हाड़ी बहिना।

आम जनता को जगाती, ज्ञानेन्द्र साज की एक एसी ही तेवरी, मुलाहिज़ा हो-

लूट रही सरकार, साथी जाग रे
कर कोई उपकार, साथी जाग रे।
तेरे-मेरे सबके तन पर है अब तो

महंगाई की मार, साथी जाग रे।

असंतोष आक्रोश-भरी इस तेवरी के माध्यम से कवि रमेशराज अपनी लेखनी से ही वार्तालापरत हैं, तेवरी-

अब हंगामा मचा लेखनी
कोई करतब दिखा लेखनी।
मैं आदमखोरों से लड़ लूँ
तुझको चाकू बना लेखनी।
सब घायल हैं इस निजाम में
कौन यहाँ पर बचा, लेखनी।

गोपियाँ ज्ञानी ऊधो को ज्ञान दे रही हैं, निम्न तेवरी के माध्यम से भावन्वति की निरन्तरता दृष्टव्य है-

सुख बस्ती में श्याम ने ऐसे बाँटे रोज
दर्द गया हर गाल पर, जड़ कर चाँटे रोज। मरें हम कब तक ऊधो?
डकैतियाँ तो पड़ गयी पहुंच न पायी चौथ
इस पर थानेदार ने डाकू डाँटे रोज। मरें हम कब तक ऊधो?

बहाना तो ज्ञानवान ऊधो को ज्ञान का दान है, परन्तु अज्ञानी गोपियाँ रमेशराज की इस तेवरी के माध्यम से सारी व्यवस्था पर निर्मम चोट कर जाती है। शिल्प व कथ्य दोनों की दृष्टि से उद्धृत तेवरी ग़जल से मीलों दूर है-

नौकरशाही ने किये, ऊधो अजब कमाल
दफ्तर-दफ्तर बैठ कर खींची जन की खाल। लाल जसुदा के चुप हैं।
साँस-साँस में भर गयी नयी विषैली वायु
वृन्दावन भी हो गया, जैसे अब भोपाल। लाल जसुदा के चुप हैं।

रमेशराज, एक प्रयोगधर्मी कवि के रूप में, एक हाइकूदार तेवरी के माध्यम से , जनता जनार्दन का असंतोष व्यक्त करते हैं। भोली गोपियाँ, किस प्रकार विद्वान ऊधो की खबर ले रहीं हैं, उक्त तेवरी में दृष्टव्य हैं-

पहले भूख मिटाइये, ऊधो ब्रज में आप।
फिर मोबाइल लाइये, ऊधो ब्रज में आप। सियासी दाँव न खेलो।
हरित क्रान्ति रट रात-दिन, बिन बिजली बिन खाद
हमको मत भरमाइये, ऊधो ब्रज में आप। सियासी दाँव न खेलो।

वस्तुतः हम कह सकते हैं कि तेवरी एक स्वतंत्र, व स्वावलम्बी व सम्पूर्ण विधा है, जो गीत और गीतात्मकता के साथ आत्मीय सबंध बना चुकी है। भले ही तेवरी लिखने वालों कवियों की संख्या, गिनी-चुनी है, परन्तु तेवरी के जन्म के पीछे जो तर्क, जो ऊर्जा है, उससे कोई इन्कार नहीं कर सकता।

सम्पर्कः ३/२९ सी
लक्ष्मीबााई मार्ग
रामघाट रोड, अलीगढ़
मो. ९८९७४१०३२०
९७६०००२२७४

घड़ा पाप का भर रहा: विद्रूपता पर करारी चोट

● डॉ. हरिसिंह पाल

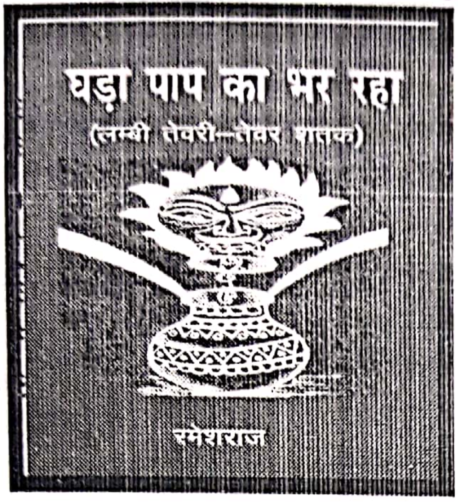

सद्य प्रकाशित 'घड़ा पाप का भर रहा' 'तेवरी संग्रह'-तेवरी काव्य विधा को समर्पित एक लघु शिल्प की दृष्टि से पठनीय है। रमेशराज विधा को प्रतिष्ठापित करने में जो सक्रिय निभाई है, वह सराहनीय है। आप मेरे अलीगढ़ में रहकर साहित्य की सेवा यह मेरे लिए आत्मीयता से परिपूर्ण आप हम लगभग समव्यस्क भी हैं। साहित्यिक उपलब्धियां इसलिए भी आकर्षित करती हैं।

घड़ा पाप का भर रहा' की पंक्तियां समकालीन समाज की विसंगतियों, विरोध ाभासों और विद्रूपताओं पर करारी चोट करती प्रतीत होती हैं। काव्य कला निश्चय ही भाषा द्वारा भावों की साधना ही है। इस कला में आप निपुण हैं। आपकी यह तेवरी मन को छूती है। 'मौत न हो' विषय को लेकर आपने तेवर-शतक की ही रचना कर दी, यह हिन्दी काव्यजगत की अनूठी घटना है। ये पंक्तियां तो तेवरी को ही व्याख्यायित कर देती है-

'शब्द-शब्द से और कर व्यंग्यों की बौछार
यही कामना तेवरियों में अभिव्यंजन की मौत न हो॥

साथ ही आपने ग़ज़ल और तेवरियों को सीमांकन कर नई दिशा दी है-

आलिंगन के जोश को कह मत तू आक्रोश,
ग़ज़लें लिख पर 'कथ्य' काफिया और वज़न की मौत न हो॥

इस लम्बी तेवरी को पढ़कर लगा कि भाव की प्रवहमन्यता के आगे भाषा की दीवार भरभराकर गिर पड़ी है। हिन्दी के तत्सम तद्भव और देशज शब्दों के साथ-साथ अंग्रेजी और अन्य विदेशी (अरबी,फारसी,पुर्तगाली आदि) के शब्द भी बेरोकटोक बहते चले आए हैं। यथा- जहां अंगेजी के शब्द-टाई, पेंट, सूट,गारण्टी डिस्को कलब, शर्ट, ऑनर किलिंग, सिस्टम, चयन कमेटी, टीचर आदि है, वहीं उर्दू के रहबर, दलाल, दुआ, यार, शाद, रोशनी, जोश, काफिया, खाक, आफत, बर्बर, फतह, जंज़ीर, तंगज़हन आदि शब्द हैं। वहीं नए-नए शब्द अपनी ओर से गढ़कर तेवरी की आत्मा को जाग्रत बनाए रखने में सफलता पायी है। यथा- नव चटकन, नवचिन्तन, वलयन सद्लेखन, हिन्दीपन, किलकन, घुटअन, काव्यायन, शब्दवमन, आयन जैसे शब्दों का प्रयोग निस्संदेह शब्द-साधना का ही सुपरिणाम है। इस कृति के अंत में 'सर्प कुण्डली राज' छंद में तेवरी प्रस्तुत कर आपने नया प्रयोग किया है जो पूर्णतया सफल है। हिन्दी का 'सिंहावलोकन' छंद भी लगभग इसी प्रकार का है। सिंहावलोकन में जहां काव्य-पंक्ति का अंतिम शब्द अगली काव्य पंक्ति का अंग बनता है, वहीं सर्प कुण्डली में काव्य पंक्ति का अंतिम काव्यांश (या अर्द्धाली) अगली पक्ति को बढ़ाती है। अस्तु एक ही पुस्तकनुमा कृति में रमेशराज ने काव्य के दो छंदों से सहज ही परिचय हो गया। आपकी पत्रिकां 'तेवरीपक्ष' व आपकी रचनाएं पढ़ने को मिलती रही हैं, जो मन को सुख ही देती हैं। आपकी यह 'तेवरी साहित्य यात्रा' अनवरत जारी रहे यही वाग्देवी से प्रार्थना है।

-६८४, इन्द्रापार्क, पालम मार्ग, नयी दिल्ली-११००४५

एक अनूठी काव्यकृति-जै कन्हैयालाल की

● डॉ. रामकृष्ण शर्मा

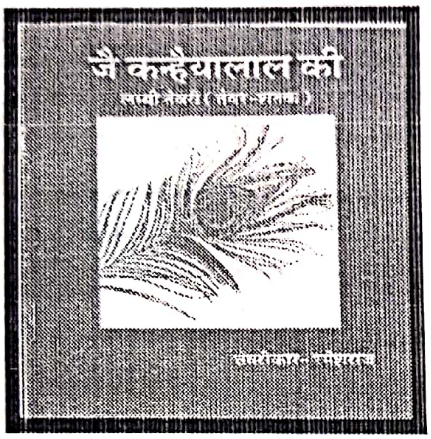

साहित्य जीवन का सबसे बड़ा सत्य भी है और शृंगार भी। यदि आदर्श आदमियत की कोई सबसे बड़ी निशानी है तो वह साहित्य ही है। समस्त जीवन-मूल्य साहित्य की ही संतति है। 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' इन तीनों का समवेत रूप भी साहित्य में ही दिग्दर्शित होता है। साहित्य वह खजाना है जिसमें पारखी एक से एक बहुमूल्य रत्न खोज लेते हैं। यह भी निर्विवाद सत्य है कि साहित्यकार से बढ़कर कोई जीवन का पारखी नहीं होता और न ही नूतनता का अन्वेषी। नई-नई खोज साहित्यकार के स्वभाव में सहज रूप से निसर्ग-प्रदत्त प्रतिभा के प्रतिफल कहे जा सकते हैं। अतिशय प्रतिभाशाली एवं प्रखर कारयित्री मेधा से अभिमंडित साहित्यकार नई विधाओं के पुरोधा भी बन जाते हैं। कविवर श्री रमेशराज ऐसे ही साहित्यकार हैं जिनकी दृष्टि नूतन क्षितिजों का अन्वेषण करती है। हिंदी साहित्य में तेवरी-तेवर जैसी नितांत नूतन विधा अन्वेषण एवं स्थापना इनका ऐसा योगदान है जिसे आगामी शताब्दियां याद रखेंगी। इसी अनूठी विधा में लिखित इनकी अठारह पुस्तकें अपने आप में एक कीर्तिमान है।

सद्य प्रकाशित ''जै कन्हैयालाल की'' (लंबी तेवरी-तेवर-शतक) हस्तगत है। प्रथम संस्करण २०१५ मूल्य ४० रुपये सार्थक-सृजन प्रकाशन, ईसानगर, अलीगढ़ द्वारा प्रकाशित है। मात्र १५ पृष्ठों की लघुकाय पुस्तक है किन्तु कथ्य और कौशल दोनों की दृष्टि से बेजोड़ एवं अनूठी है। कवि ने प्रथम पृष्ठ पर ही शीर्षक के नीचे टिप्पणी दी है-'कृष्ण रूप में कंस जैसे हर शासक के प्रति' जिससे मुख्य मन्तव्य स्पष्ट हो जाता है। करारे व्यंग्य-देखन में छोटे लगें, घाव करें गंभीर। रमेशराज के व्यंग्यों की ख़ास बात यह है कि इनमें कहीं स्तरहीनता नहीं, कहीं अशिष्टता नहीं, न कहीं मर्यादा का उल्लंघन। फिर भी करारे प्रहार। जीवन का भोगा हुआ यथार्थ जैसे साकार खड़ा हो। कैसी सहज-सरल अभिव्यक्ति, लक्ष्य की ओर दनदनाते-सनसनाते तीर की तरह-

जन को न रोटी-दाल जै कन्हैया लाल की!
नेताजी को तर माल, जै कन्हैयालाल की! नीति है कमाल की!!

व्यंग्य को अधिक धारदार और मारक बनाने के लिये कवि ने उद्धव-गोपी प्रसंग को बड़ी होशियारी के साथ जोड़ दिया है-

ऊधौ देश पर आप कर्ज विश्व-बैंक का,
लाद-लाद हो निहाल, जै कन्हैया लाल की! नीति है कमाल की!!

कथ्य की सशक्तता के साथ कवि का कौशल भी प्रभावित करता है। इसे मैं उक्ति-वैचित्र्य का कमाल मानता हूं। साथ ही वर्ण-मैत्री भी निर्दोष एवं प्रभावी है। प्रकृति से जो प्रतीक लिये गये हैं, वे कवि के मन्तव्य को भी स्पष्ट करते हैं तथा उनसे काव्य में कलात्मक बिम्ब-सौन्दर्य भी प्रभावित करता है।

देखिए एक उदाहरण-

खुशियों का मानसून अँखियों से दूर है
सूख गये सुख-ताल, जै कन्हैया लाल की! नीति है कमाल की!!

कवि ने अपने कथ्य को अधिक ग्राह्य बनाने के लिये पौराणिक इंगित भी दिये हैं। कहीं विरोधभास से अपना मन्तव्य स्पष्ट किया है तो कहीं आधुनिक योजनाओं की विडम्बनाओं की ओर इंगित है-

केवल अंगूठे नहीं मांगें आज द्रोणजी,
भील को करें हलाल, जै कन्हैया लाल की! नीति है कमाल की!!
आये वृक्ष-रोपण को ऊधौ आज लोग जो
काट रहे डाल-डाल, जै कन्हैया लाल की! नीति है कमाल की!!

कुल मिलाकर यह एक महत्वपूर्ण प्रयोग है, नूतन अन्वेषण है तथा हिन्दी काव्य के क्षेत्र में एक नई राह है। इस पर अनुगामिता निसन्देह एवं अपरिहार्य है, जो रमेशराज को एक पुरोधा का स्थान देगी।

-सरस्वती सदन, मौ. कौड़ियान, भरतपुर (राज.)

मुक्तक विन्यास में एक तेवरी

न आता हम को छन्द विधान
मगर हम लेखक बहुत महान।
चुराकर गीतों के कुछ अंश
रच दिया संग्रह आलीशान।।

नही बिन स्वारथ के गुणगान
लूटा कर ही मिलती पहचान।
दान कर देंगे जब कुछ राशि
करेंगे मंच तभी सम्मान।।

न कोई प्रश्न करे नादान
बहुत ही उत्तर है आसान।
कहें कुछ भी लेखक महाराज
न होगा अब कोई व्यवधान।।

नीता अवस्थी
मो. 9169222741

सरकार पंजीकरण संख्या-51714/87

शोधार्थियों के लिये एक महत्वपूर्ण पुस्तक

विचार और रस

(रस-निष्पत्ति का वैचारिक विवेचन

लेखक-**रमेशराज**

राष्ट्रीय बाल कविताएँ

कवि-**रमेशराज**

प्राप्ति स्थल-बजरंग प्रकाशन, सागरपुर, दिल्ली

महत्वपूर्ण तेवरी संग्रह

(1) अभी जुबां कटी नहीं	संपादक- रमेशराज
(2) कबीर ज़िन्दा है	संपादक- रमेशराज
(3) इतिहास घायल है	संपादक- रमेशराज
(4) एक प्रहार: लगातार	तेवरीकार-दर्शन बेजा
(5) देश खण्डित हो न जाए	तेवरीकार- दर्शन बेजार

सार्थक-सृजन, १५-१०९, ईसानगर, निकट-थाना सासनीगेट, अलीगढ

ये जंजीरें कब टूटेंगीं

शीघ्र प्रकाश्य तेवरी-संग्रह (तेवरीकार-दर्शन बेजार)

सार्थक-सृजन, १५-१०९, ईसानगर, निकट-थाना सासनीगेट, अलीगढ

बुक पोस्ट/डाक पंजीयन संख्या-ए.एल.जी. /67/08/2010

प्रतिष्ठार्थ-

संपादक/ प्रकाशक/ मुद्रक रमेशराज द्वारा सार्थक-सृजन प्रकाशन , 15-109, ईसानगर, निकट-थाना सासनीगेट, अलीगढ़ के लिये शरदा प्रटिंग प्रैस हेतु गुप्ता प्रिंटिग प्रैस, अचल तालाब, अलीगढ़ से मुद्रित। **मोबाइल- ९६३५५९६३०**